International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.in
Volume 1; Issue 7; September 2016; Page No. 44-45

स्मृतियों में वर्णित दूत की योग्यता एवं कार्य

रेखा सिंह, राकेश शर्मा

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीयों ने राज्यों के बीच सम्बन्धों के महत्व समझा था। अतएव उन्होंने राजनयिक (दौत्य) सम्बन्ध विकसित किये थे। इस प्रकार उन्होंने पृथक रहने की नीति को अस्वीकार किया था। जब कभी एक राज्य दूसरे पड़ोसी राज्य के साथ शान्ति सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा करता था या एक राज्य दूसरे राज्य को सरकारी रूप से कोई सूचना या पत्र भेजना चाहता था, या जब कभी अनेक राजाओं को बड़े यज्ञों राजसूय, वाजपेय आदि अथवा सम्मेलनों में बुलाया जाता था। तो इन कार्यों तथा इनके समान कार्यों को सम्पादित करने के लिये दूत का प्रयोग किया जाता था। तात्पर्य यह है कि पर्राष्ट्रों में अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति को दूत कहा जाता है। दूत का पद निःसन्देह बहुत प्राचीन है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख हमें ऋग्वेद में मिलता है।[1] प्राचीन भारतीय विद्वानों ने दूत की महत्ता व आवश्यकता को स्वीकार किया है। विभिन्न राज्यों अथवा राजाओं के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य साधन प्रायः दूत ही होता था, अतः दूत का पद और कार्य बहुत महत्वपूर्ण समझे जाते थे। मनु का कथन है–

> दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
> दूतस्तत्कुरूते कर्मं भिद्यन्ते येन मानवाः।।

अर्थात ''दूत ऐसे राजाओं के बीच जिनमें किसी प्रकार का गठबंधन या मैत्री सम्बन्ध हो विवाद पैदा करा देता है तथा शत्रु राजाओं के बीच शान्ति स्थापित कराने में सफल होता है''।[2] कौटिल्य ने दूत को राजा का मुख कहा है, उसी के माध्यम से राजा पारस्परिक वार्ता–विनिमय करते थे।[3] वाल्मीकि के शब्दों में – '' जो राजा चतुर होते हैं, वे दूतों के द्वारा ही शत्रु का समस्त हाल जानकर थोड़े प्रयत्न से ही शत्रु को भगा देते हैं।''

इस प्रकार दूत का पर्राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ये दूत राजा द्वारा नियुक्त किये जाते थे। कभी–कभी विशेष अवसरों के लिये विशेष प्रकार के दूतों की भी नियुक्ति होती थी। दूत का पद बहुत ही महत्वपूर्ण होता था। वर्तमान समय में जिस प्रकार दूत दूसरे देश में अपने देश की प्रभुत्व शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, उसी प्रकार प्राचीन भारत में दूत का पद सर्वथा माननीय था। यह एक गौरव पूर्ण पद समझा जाता था। अपनी इस गुरुता को निभाने के लिये आजकल की ही भाँति उस समय भी वे विशेष सुविधाओं तथा सम्मान व विशेषाधिकारों से विभूषित रहते थे। प्राचीन एवं अर्वाचीन दूत पद्धति में कुछ परिवर्तन लक्षित होते हैं। प्राचीन समय के दूत स्थायी रूप से दूसरे देश में सम्भवतः निवास नही करते थे, जब कि वर्तमान समय के दूत जिन देशों में से हमारे सम्बन्ध अच्छे है, वहाँ स्थायी रूप से निवास करते हैं, तथा सम्बन्ध बिगड़ने पर इन्हें बुला लिया जाता है।

दूत की योग्यतायें:

मनुस्मृति में दूत की योग्यता एवं कार्य का विस्तृत विवरण मिलता है। मनुस्मृति के अनुसार ''ऐसे व्यक्ति को दूत बनाना चाहिए जो सर्व शास्त्रविशारद हो, आकार और चेष्टा को समझनेवाला हो, पवित्र आचरण वाला हो, दक्ष हो, उत्तम कुल में उत्पन्न हो, राज्य में अनुरक्त हो, स्मरण शक्ति से सम्पन्न अर्थात संदेश को न भूलने वाला हो, सुन्दर शरीर वाला हो, निर्भिक हो, समस्त शास्त्रों में निपुण हो तथा बोलने में चतुर हो।[4] मनु स्मृतियों में प्रतिपादित दूत की योग्यताओं का अन्य ग्रन्थों ने भी समर्थन किया है। परन्तु पाराशर स्मृति एवं नारद स्मृति इस विषय में मौन है। उन्होंने दूत का कोई किसी प्रकार का उल्लेख नहीं किया है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में तथा शुक्रनीति में मनु का ही एक प्रकार से समर्थन किया है। शुक्रनीति के अनुसार दूत इंगित, आकार, चेष्टा को जानने वाला, स्मृतिमान, देश व काल का ज्ञाता, सन्धि और विग्रह की बातें करनेमें समर्थ, वाग्मी और निर्भिक होना चाहिए।[5] महाभारत, का मन्तव्य है कि कुलीन, बोलने में दक्ष, प्रिय बोलना, संदेश को उसी रूप में कहने की क्षमता और स्मरण शक्ति आदि गुणों से दूत को सम्पन्न रहना अति आवश्यक है।[6] वास्तव में गुणों से सम्पन्न दूत अपनी कार्य सिद्धि में अवश्य सफल होगा। दूत की शुद्धता पर इसलिये जोर दिया गया है जिससे की वह धन या स्त्री आदि के प्रलोभन से स्वामी के कार्य का विनाश नहीं करेगा, दक्ष होने से अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकेगा, स्मरण शक्ति दृढ़ होने से संदेश को नहीं भूलेगा, देशकाल का जानकार होने से परिस्थिति के अनुसार अपने विचार से कार्य कर लेगा और वाक्पटु होने से सुन्दर एवं मृदुल युक्तिपूर्ण वचनों से दूसरों को प्रभावित करने में समर्थ होगा।

दूत के प्रकार

इस विषय में मनु द्वारा किसी भी प्रकार का उल्लेख नहीं किया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति से भी कोई प्रत्यक्ष सूचना नहीं मिलती परन्तु मिताक्षरा ने इसके तीन प्रकारों का उल्लेख किया है।[7]

1. निःसृष्टार्थ– अपने आप जो देश, कालोचित राजकार्य करने में समर्थ हो अर्थात अपने देश की परिस्थिति तथा पर्राष्ट्र की परिस्थिति को समझते हुए जो दूत स्वराष्ट्रनुकूल बातचीत अपने आप कर लेता है, उसे निःसृष्टार्थ दूत कहते हैं।
2. संदिष्टार्थ या मितार्थ– जो दूत अपने राजा के द्वारा कही हुई बात को केवल दूसरे देश के राजा को कहे। उन्हें संदिष्टार्थ या मितार्थ दूत कहते हैं।
3. शासनहारी– जो दूत केवल राजा के लिखित शासनादि कार्य को पहुँचाने का कार्य करते हैं, उन्हें शासनहारी दूत कहते हैं।

अलतेकतर ने लिखा है– विदेशों में भेजे जाने वाले दूत तीन श्रेणी के होते थे। निष्टार्थ दूत वह था– जिसे अपने राज्य की ओर से सब विवादभूत बातें तय करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। परिमितार्थ दूत दिये गये निर्देश से बाहर नही जा सकता था। और शासन हर दूत केवल अपने राज्य की ओर से संदेश देता था। और उसका जवाब लाता था और उसे बातचीत का अधिकारी नहीं था।[8]

दूत के कार्य

प्राचीन काल में दूत के अधीन अनेक कार्य थे। मनु के मतानुसार

दूत में ऐसी शक्ति होती है जिससे वह विभिन्न राज्यों में जो एक दूसरे के विपरीत संधि सम्पादन करने में समर्थ होता है। वह संधि द्वारा मिले हुए राजाओं में फूट (विग्रह) भेदभाव बड़ी निपुणता से करा देता है। दूत वह कार्य कर देता है जिससे मनुष्य में फूट (विग्रह) पड़ जाती है। अर्थात दूत संधि और विग्रह दोनों करने की सामर्थ्य रखता है।[9] वह एक राजा का अन्य राजाओं से संबंध तथा अन्य राजाओं के विभिन्न कर्तव्यों को जानता है। इन रहस्यों को जानने के लिये वह नौकरों आदि के हाव भाव से तथा स्वयं राजा के अभिप्रायः सूचक भावों से अथवा अन्य परिजनों के व्यवहार से सामग्री एकत्रित करके उनके समन्वय के रूप में अपना अभिप्राय सिद्ध करता है।[10] दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि दूत इन राजनैतिक रहस्यों को समझने के लिये राजा के चारों ओर मनोवैज्ञानिक निरीक्षण करता है, और उसी में उसे रहस्यों का उदघाटन भी प्राप्त हो जाता है। मनु आगे कहते हैं यथा–

बुदध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथ प्रयत्नमतिष्ठेद्यधऽऽत्मानं न पीडयेत्।।

अर्थात शत्रु राजा के सब अभिष्ट कार्य को अर्थात नीति को ठीक तरह से जान कर उसे ऐसे प्रयत्न करने चाहिये, जिससे अपने ऊपर कोई कष्ट न आये और अपने राजा का कार्य भी पूर्ण हो जाये।[11] इससे स्पष्ट होता है कि दूत का पद तथा कार्य दोनों ही अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। यही कारण है कि मनु व याज्ञवल्क्य[12] ने राजा के दैनिक कृत्यों के अन्तर्गत दूत भेजने के कार्य को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। परराष्ट्रों के साथ मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराने में तथा संधि आदि के कार्यों में दूत अवश्य ही प्रभाव डालता था। वास्तव में देश की विदेशनीति निर्धारित करने का महत्वपूर्ण कार्य दूत के ही अधीन था।

भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार परस्पर राज्यों के विवाद को दूर करने के लिये युद्ध को अन्तिम साधन माना गया है। साम, दाम और भेद इन तीन उपायों से जब काम न चलता था, तब अन्त में युद्ध का सहारा लिया जाता था। फिर भी युद्ध मैदान में उपस्थित होने के पूर्व तक एक बार दूत को भेजकर अंतिम उपाय युद्ध रोकने के लिये किया जाता था। महाभारत युद्ध से पूर्व कृष्ण के समान सम्मानीय व्यक्ति दूत बनकर गये थे। लंका पर आक्रमण करने से पूर्व रामचन्द्र जी ने बलि पुत्र अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा था। दूत का कार्य शान्तिपूर्ण रीति से सम्बन्ध बनाना था। इसके अतिरिक्त अन्य राज्यों की प्रगति तथा सैन्यबल की जानकारी प्राप्त करने के लिये चरो (भेदियों, जासूस) को भेजने की व्यवस्था थी। ये चर गुप्त रूप से अन्य राज्यों में जाकर वहाँ का भेद अपने राजा को देते थे। युद्ध आदि के अवसरों पर इनके द्वारा प्रदत्त की गयी जानकारी विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती थी। अलतेकर ने लिखा है कि– ''आजकल की भाँति प्राचीन काल में भी दूत अधिकृत और प्रकाश्य रूप में भेदिये का कार्य करता था। उसका कार्य विदेशी राजपुरूषों से जान पहचान करके उस देश की वास्तविक राज्य नीति की जानकारी प्राप्त करना, उसके जन बल और साधनों का ठीक–ठाक अनुमान करना और अपने गुप्तचरों द्वारा उसके दुर्ग और सेना के प्रमाणिक विवरण प्राप्त करना यह सब महत्वपूर्ण कार्य दूत का ही था। यह सब वह ''गूठ लेख'' (संकेत लिपि) द्वारा अपनी सरकार अर्थात राजा के पास भेजता था।[13] स्पष्ट है कि दूत विभिन्न राज्यों में सम्पर्क स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण स्थान थे। अन्य राज्यों की राजनैतिक, आर्थिक, प्रशासनिक और भौगोलिक सभी क्षेत्रों की शक्ति एवं दुर्बलताओं से अपने राजा को परिचित कराना ही दूत का मुख्य कार्य था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. ऋग्वेद– 1/12/1;1/61/3;8/44/3
2. मनुस्मृति– 7/66
3. अर्थशास्त्र– 1/16
4. मनुस्मृति– 7/63
5. शुक्रनीतिसार–2/87, 88
6. महाभारत शान्ति पर्व– 85/28
7. याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा– 1/328
8. अलतेकर, अ0स0 – प्राचीन भारतीय पद्धति पृ0 230
9. मनुस्मृति– 7/66
10. मनुस्मृति– 7/67
11. मनुस्मृति– 7/68
12. याज्ञवल्क्य– 1/328
13. अलतेकर– प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पृ0 220